अग्निपुराण के आधार पर देवप्रतिमा विमर्श

डा. नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी

विभिन्न देवताओं की प्रतिमाओं का निर्माण, उनकी प्रतिष्ठा, पूजन विधि एवं विशिष्ट देवताओं की सही पहचान के लिये अन्य ग्रन्थों की भाँति पुराणों का मार्ग दर्शन भी बड़े काम का होता है। पुराणों में यह सामग्री कहीं एक स्थान पर अथवा फुटकर सन्दर्भों में यत्र तत्र बिखरी पड़ी रहती है। इस दृष्टि से लक्षणाध्यायों के सिवा विविध देवताओं के ध्यान विषयक श्लोक, रूप वर्णन, उपासकों के सामने वरदान हेतु प्राकट्य, स्तुतियाँ, नामावली, व्रतों के विवरण, स्तोत्र आदि अत्यधिक सहायक होते हैं। लक्षण अध्यायों का समावेश करने वाले दो पुराण प्रमुख हैं—**मत्स्यपुराण** और **अग्निपुराण**। उपपुराणों की हम यहाँ बात नहीं कर रहे हैं। वर्तमान **मत्स्यपुराण** की निर्माण तिथि स्थूल रूप में ईसवी सन् 1000 तक का भी हो सकता है। वर्तमान **अग्निपुराण** सन् 800 से 1000 के बीच का समझा जाता है। डा. हाजरा जैसे विद्वान् ने यह मत अभिव्यक्त किया है कि वर्तमान **अग्निपुराण** का मूल रूप '**आग्नेयपुराण**' के नाम से प्रसिद्ध था, जिसे 'वह्निपुराण', 'वह्निज', 'वाह्न' इन नामों से भी जाना जाता था[1]। '**वह्निपुराण**' इस नाम को वे दक्षिण भारत की देन मानते हैं[2], हाजरा का यह भी कथन है कि प्राचीन आग्नेय या वह्निपुराण को वैष्णवों द्वारा, विशेषतया भागवत संप्रदायी वैष्णवों द्वारा ल० सन् 900 के पूर्व पुन: संपादित किया गया[3], वही आज का **अग्निपुराण** है। वैष्णवों का प्रभाव वर्तमान **अग्निपुराण** द्वारा प्रस्तुत प्रतिमाविमर्श में भी स्पष्ट होता है। इस विषय का साकल्य से विचार करने के बाद यह भी कहा जा सकता है कि अग्निपुराण का वर्तमान रूप प्रामुख्य से पूर्व भारत की देन है। इसमें वर्णित कई अभिप्राय पूर्व भारतीय कलाकृतियों में देखे जा सकते हैं। इस प्रास्ताविक निवेदन के बाद हम लेख के मुख्य विषय की ओर मुड़ते हैं।

अग्निपुराण में प्रतिमा निर्माण का वर्णन करने वाले मुख्यतया ग्यारह अध्याय (अ० 44-55) हैं, इनके अतिरिक्त देवालय निर्माण (अ० 38-43), देवता प्रतिष्ठा (अ० 57-66, 95-102), जीर्णोद्धार विधान (अ० 67, 103), व्रतों के विवरण (176-199) तथा मन्त्राध्याय (अ० 306-319) भी हमारी प्रचुर सहायता करते हैं।

प्रतिमा निर्माण के माध्यम

देव प्रतिमा की निर्मिति के लिये सात माध्यम गिनाये गये हैं। ये हैं लोह अर्थात् धातु, रत्न, मिट्टी, लकड़ी (दारू), शिला, सुगन्धित द्रव्य (गन्ध) तथा पुष्प (कुसुम)। इनमें मिट्टी, गन्ध तथा पुष्प की प्रतिमाएँ 'तत्काल पूजन' अर्थात् अल्पकालीन अनुष्ठान के लिये 'सर्वकामफल प्रद' मानी गयी हैं[4]। अन्य माध्यमों में शिलामयी मूर्ति की उपादेयता स्थायित्व की दृष्टि से अधिक है, अत: यह पुराण आगे इसी माध्यम का कुछ अधिक विस्तार से विचार करता है।

शिलाओं में पर्वत से प्राप्त पाषाण श्रेष्ठ माने गये हैं, उनके अभाव में भूमि से मिलने वाले (भूगत) पत्थरों का प्रयोग मान्य है। शिलाओं में हल्के रंग की श्वेत शिला (पाण्डुरा), लाल (अरुणा), पीली (पीता) अथवा काली (कृष्णा) शिला प्रशस्त मानी गयी है। समुचित रंगों की शिलाएँ न मिलने पर एक अन्य वर्गीकरण का सहारा लिया जा सकता है[5]। इस प्रसंग में उल्लेखित 'सिंहविद्या' पद स्पष्ट नहीं है। अगले श्लोक से कुछ संकेत मिलता है कि कदाचित् श्वेत या कृष्ण रेखाओं से युक्त शिलाओं को 'सिंहः' कहा जाता था। इसी श्लोक में यह भी बतलाया गया है कि काँसे की घण्टा के समान नाद उत्पन्न करने वाली शिला 'पुल्लिंगा' या 'विस्फुलिंगा' नाम से जानी जाती थी। वही लक्षण यदि न्यून हो, अर्थात् पूर्ण लक्षित न हो (तन्मन्द लक्षणा) तो उसे 'स्त्री' एवं उनका अभाव हो (रूपाभावात्) तो नपुंसक कहते थे। यदि शिला पर 'मण्डल' (rings) दिखलायी पड़े तो उसे 'सगर्भा' समझकर उसका परित्याग करने की बात कही गयी है। **विष्णुधर्मोत्तर** पुराण[6] में भी ग्राह्य एवं अग्राह्य शिलाओं का लगभग इसी प्रकार का किन्तु कुछ विस्तार से विवेचन

किया गया है। वहाँ श्वेतशिला ब्राह्मणों के लिये, लाल क्षत्रियों के लिये, पीली वैश्यों के लिये तथा काली शिला शूद्रों के लिये प्रशस्त मानी गई है। साथ ही बकरी के दूध के प्रयोग से 'सगर्भा' शिला का पता लगाकर उसका परित्याग करने का विधान है। भूगर्भशास्त्र के प्रकाश में शिलाविषयक इन सभी तथ्यों का कार्यकारण भाव जानना उचित होगा।

योग्य शिला का पता लगने पर वन में (शिला स्थान पर) जा कर 'वनयाग' के माध्यम से 'हरि' का यजन, चावल मिश्रित जल (शालि लोय) से शिला का सिंचन, टंक (टाँकी, छेनी) आदि शस्त्रों का पूजन, उस स्थान पर रहने वाले जीव (सत्त्व), यातुधान, गुह्यक, सिद्ध आदि की सन्तुष्टि के निमित्त पूजन तथा बलिदान के साथ उनसे प्रार्थना करने का विधान है कि शिल्पी की यह यात्रा केशव की आज्ञा से 'विष्णुबिम्ब' का निर्माण करने के लिये की गई है, अत: इस कार्य में बलिदान से सन्तुष्ट होकर सभी सहायक हों और इस स्थान को छोड़कर अन्यत्र चले जाँय[7]। इसके बाद शिल्पी से कहा गया है कि वह वहीं पर रात में 'स्वप्न मंत्र' का जाप करते हुए शयन करे तथा यह प्रार्थना भी करे कि 'हे देवदेवेश ! मैं आपके निकट शयन कर रहा हूँ। आप मेरे द्वारा इच्छित सभी कार्यों के लिये स्वप्न में निर्देश दें[8], मेरे हृदय में वे स्पष्ट हों। शुभ स्वप्न को शुभ तथा अशुभ स्वप्न को 'सिंहह:' (अशुभ?) जिसके लिये शिल्पी के साथ दैवज्ञ अर्थात् ज्योतिषि को भी शयन करना है। अग्निपुरण बतलाता है कि प्रात:काल होने पर शिला को अर्घ्य प्रदान करके कुछाल, टंक आदि शस्त्रों को मधु और घी से संपादित करना चाहिये। तत्पश्चात् पूजित शिला को वस्त्र से ढँक कर रथ द्वारा कारखाने (कारुवेश्म) में लाना चाहिये। प्रतिमा निर्माण करते समय कर्ता को अपने में विष्णु की तथा शिल्पी में विश्वकर्मा की भावना करनी चाहिये एवं शस्त्रों को भी विष्णु रूप ही मानना चाहिये[9]। इस काल में शिल्पी का 'जितेन्द्रिय' रहना भी आवश्यक कहा गया है।

तालमान

अग्निपुराण के चवालीसवें अध्याय में शरीर के अवयवों की नापजोख तथा मूर्ति निर्माण की चर्चा है। वन से समारोह पूर्वक लायी गई शिला को पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख स्थापित करके बलिपूजनादि के साथ कर्म आरंभ करना है। इस विवेचन में 'सूत्र', 'अंगुल', 'ताल' आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है जिनकी परिभाषा यहाँ तो नहीं है पर अन्य ग्रन्थों में उपलब्ध है। 'सूत्र' लोक भाषा का सूत है जो लगभग 1/10 इंच के बराबर होता है। 'अंगुल' साधारण मनुष्य की मध्यमा या बीज वाली अम्गुली की चौड़ाई है तथा ताल बारह अंगुल के बराबर होता है। इस अध्याय में 'वासुदेव' मूर्ति का विस्तार से चर्चा की गई है। मुकुट, मुख, नाभि से मेढ्र या लिंग, जंघा, जानु, कक्षा, स्कंध, बाहु, प्रबाहु, बाहुदण्ड, कर्पूर (केहुनी), हस्त, करताल (हथेली), कटि, गुल्फ (टरबना) आदि की लम्बाई, चौड़ाई, गुलाई, ऊँचाई, (विस्तार, अन्तर, आयाम, दैर्घ्य, परिणाह, वेष्टन) आदि के नाप का पूरा पूरा उल्लेख है। ऊँचाई की दृष्टि से वासुदेव का मुकुट 12 अंगुल, मुख 12 अंगुल (ललाट 4, नाक 4 तथा ठुड्डी तक 4 अंगुल), कण्ठ से हृदय तक 12 अंगुल, हृदय से लिंग तक 12 अंगुल, जांघ 24 अंगुल, तथा घुटने से टरवने तक 24 अर्थात् कुल ऊँचाई 108 अंगुल = 9 ताल की होगी। मूर्ति के आयुध तथा उसमें प्रयुक्त कुछ अभिप्रायों के भी नाम मिलते हैं, यथा वासुदेव के हाथों में प्रदक्षिणा क्रम से (दाहिनी ओर से) पद्म, चक्र, शंख और गदा रहेगी, उनके जांघों तक ऊँची (ऊरुमाछ्रिता) पद्मधारिणी श्री तथा वीणाधारिणी पुष्टि (अर्थात् लक्ष्मी और सरस्वती[10]) रहेंगी। आयाम या चौड़ाई में प्रभामण्डल मालाधारी विद्याधर तथा हाथी आदि से युक्त (हस्त्यादि भूषणा प्रभा) युक्त रहेगा तथा चरण 'पद्माभपादपीठ' पर स्थित रहेंगे।

अग्निपुराण यह भी स्पष्ट करता है कि सभी देवताओं के मान (ऊँचाई, विस्तार आदि) विष्णु (वासुदेव) तथा देवियां का पान लक्ष्मी के बराबर होगा[11]। लक्ष्मी तथा अन्य स्त्री-मूर्तियों के तालमान की चर्चा करते हुए कहा गया है कि लक्ष्मी की मूर्ति आठ ताल (96 अङ्गुली) की होगी। देवी के दाहिने हाथ में अम्बुज अर्थात् कमल और बांये में बेल का फल (बिल्व) होगा। उसके अगल बगल (पार्श्वे) चामरधारिणी की उपस्थिति आवश्यक है।

इन प्रतिमाओं के अतिरिक्त **अग्निपुराण** आकस्मिक ढंग से पचासवें अध्याय में 'विनायक' या गणपति की

प्रतिमा के प्रभागों की चर्चा करता है। गणेश की सूँड लम्बाई तथा चौड़ाई (विस्तार एवं दैर्घ्य) में 36 अंगुल, कंठ से गुह्य तक 36, नाभि से जांघ (ऊरु) 12, तथा ऊरु से पैर तक 12 अंगुल होगी। दूसरे शब्दों में प्रतिमा की कुल ऊँचाई 96 अंगुल या आठ ताल होगी। उनके दाहिने हाथों में दाँत (स्वदन्त), और परशु तथा बाँयी ओर लड्डु और कमल (उत्पल) होंगे। गणेश के आयुधों का यह क्रम रूपमण्डल को भी मान्य है[12], पर वहाँ गणेश की ऊँचाई वराह और वामन की भाँति केवल छ: ताल अर्थात् 72 अंगुल ही बताई गई है[13]।

अग्निपुराण में प्रदर्शित प्रतिमाओं के मान सर्वमान्य नहीं हैं। **मत्स्यपुराण** नवताल ऊँची मूर्ति बनाने का विस्तृत वर्णन करता है तथा इस नवताल लक्षण को 'पापनाशक' कहता है[14]। अन्य ग्रन्थकारों के अपने अपने मत हैं[15]

अग्निपुराण की पिण्डिका या **मत्स्यपुराण** की पीठिका वह आसन है जिस पर प्रतिमा या लिंग स्थापित किया जाता है। इसे 'पीठ' भी कहते हैं। **अग्निपुराण** के 45 तथा 55वें अध्याय में पिण्डिका की चर्चा है। इसकी ऊँचाई प्रतिमा के ऊँचाई से आधी होनी चाहिये[16]। मेखला, खात, प्रणाल या तोयविनिर्गम पिण्डिका के ही अंग हैं जो उल्लेखित परिमाणों के अनुसार ही निर्मित होंगे।

प्रतिष्ठा विधि

प्रतिमा लक्षणों के अनुसार शुद्ध रूप से मूर्ति के बनाये जाने पर भी वह पूजनीय नहीं होती जब तक उसका 'सजीवीकरण' या प्रतिष्ठा न की जाय। **अग्निपुराण** चार अध्यायों में[17] प्रतिष्ठा विधि की विस्तार से चर्चा करता है। साठवें अध्याय में केवल 'वासुदेव' की ही प्रतिष्ठा विधि बतलायी गयी है। संक्षेप में प्रार्थना की जाती है कि भक्त के हृदय में निवास करने वाला भगवत्तत्त्व बाहर तथा भीतर से 'बिम्ब' (मूर्ति) को 'सजीव' करते हुए उसमें ठीक वैसे ही स्थिर हो जाय जैसे अंगुष्ठमात्र पुरुष देह में निवास करता है।[18] शालग्राम या नर्मदा से प्राप्त बाणलिंगों के लिये किसी प्रतिष्ठा विधि की आवश्यकता नहीं होती। इसमें देवत्व सदैव वर्तमान रहता है। अन्यान्य देव प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा अग्निपुराण के 66वें अध्याय में भी चर्चित है। वहाँ आरम्भ में ही कहा गया है कि 'समुदाय प्रतिष्ठा' वासुदेव के समान ही होगी पर साथ ही में तत्तद्देवता के अनुसार कुछ परिवर्तन भी निरूपित हैं।

विष्णु की चौबीस मूर्तियाँ

मूलत: विष्णु (पर वासुदेव) के चार रूप या 'व्यूह' कल्पित हैं : वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध। इसके बाद प्रत्येक के तीन रूप बनकर बारह 'विभव' या 'व्यूहान्तर' सामने आते हैं। इन्हीं बारह का अधिक विस्तार है चौबीस रूप। इन सभी मूर्तियों की परिकल्पना विष्णु के चार आयुधों की— शंख, चक्र, गदा और पद्म की—स्थानभिन्नता के आधार पर की गई है। कला के क्षेत्र में विष्णु के हाथ में पद्म गुप्तकाल के अन्तिम चरण तक नहीं दिखलायी पड़ता, अत: मानना होगा कि चौबीस मूर्तियों की परिकल्पना गुप्तोत्तर काल की है। **अग्निपुराण** के 48वें अध्याय में 'चतुर्विंशति स्तोत्र कथनम्' इस शीर्षक से केशवादि चौबीस मूर्तियों के लक्षण गिनाये गये हैं, साथ ही यह भी संकेत दिया गया है कि आयुध 'प्रदक्षिण' हैं अर्थात् प्रदक्षिणा क्रम से उल्लेखित हैं, तथापि यह शंका तो बनी ही रहती है कि प्रदक्षिणा का आरंभ नीचे वाले दाहिने हाथ से करना होगा या ऊपर वाले दाहिने हाथ से। साधारणतया यह क्रम नीचे वाले दाहिने हाथ से आरंभ होता है, पर ग्रन्थान्तरों में[19] पद्धति भेद भी दिखलायी पड़ता है। **पद्मपुराण** अपनी सूची 'दक्षिणोर्ध्व कर' से गिनाता है, **वृद्ध हारीत स्मृति** नीचे वाले हाथ से आरंभ करती है। **स्कन्दपुराण** के काशी खण्ड की पद्धति तो एकदम निराली है। वह केशव, गोविन्द, विष्णु और वासुदेव इनमें से प्रत्येक के छ: रूप गिनाता है और प्रत्येक वर्ग के लिये अलग अलग प्रकार का अवलंबन करता है। केशवादि समूह (केशव, मधुसूदन, संकर्षण, दामोदर, वामन और प्रद्युम्न) के लिये 'आद्यदक्षिण कर' से, गोविन्दादि (गोविन्द, त्रिविक्रम, श्रीधर, हृषीकेश, नरसिंह, अच्युत) के लिये 'अधोवाम कर' से, विष्णुआदि (विष्णु, माधव, अनिरुद्ध, पुरुषोत्तम, अधोक्षज, जनार्दन) के लिये 'ऊर्ध्ववाम कर' से, एवं वासुदेवादि

(वासुदेव, नारायण, पद्मनाभ, उपेन्द्र, हरि, कृष्ण) के लिये 'दक्षिणाधो कर' से आयुध उल्लेखित हैं। इन सभी का सांगोपांग विचार यहाँ अपेक्षित नहीं है। केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि सभी सूचियों को तत्तत्सूत्रों के अनुसार निचले दाहिने हाथ से प्रदक्षिणा क्रम में परिवर्तित करने पर **अग्निपुराण** की तालिका के बाईस नामों की दूसरी सूचियों के साथ एकरूपता मिलती है। केवल मधुसूदन और प्रद्युम्न में परिवर्तिन है। इस पुराण के अनुसार मधुसूदन का आयुधक्रम शंख, चक्र, पद्म, गदा तथा प्रद्युम्न का गदा, चक्र, शंख, पद्म होना चाहिये।

विष्णु की ये चौबीस मूर्तियाँ सामूहिक या स्वतंत्र रूप से हमें मध्यकालीन कला के क्षेत्र में मिलती हैं। नामाङ्कनों के साथ 24 में से 13 वीरमगाँव (अहमदाबाद, गुजरात) से मिली है। अठारहवीं शती की ये कृतियां बड़ोदरा के संग्रहालय में है। गुजरात के ही वलम् नामक स्थान के एक मन्दिर से ऐसी दस मूर्तियाँ मिली हैं। मेहरौली (दिल्ली) से प्राप्त संवत् 1204 (सन् 1147) की अभिलिखित संकर्षण मूर्ति में स्वरूपों के दर्शन होते हैं। यह प्रतिमा राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली में है।

प्रतिमा निरूपण

अग्निपुराण के चार अध्याय (अध्याय 49-52) विविध देवताओं के प्रतिमा लक्षण तथा आगे के दो अध्याय (अध्याय 53-54) शिवलिंगों के मान, प्रकार आदि का वर्णन करते हैं। देव मूर्तियों की पहचान के लिये यह सामग्री बड़े काम की है। यहाँ उल्लेखित प्रत्येक मूर्ति के लक्षणों का अन्य ग्रन्थों की सहायता से तुलनात्मक विवेचन अथवा कलाकृतियों के विशाल क्षेत्र में उनकी खोज इस लेख में स्थानाभाव तथा समयाभाव के कारण संभव नहीं है। अत: यहाँ केवल कुछ महत्वपूर्ण विषयों की ही चर्चा प्रस्तुत की जा रही है।

विष्णु प्रतिमाएँ

प्रथम विष्णु के दस अवतारों को लें। आरंभिक दो अर्थात् मत्स्य और कूर्म को उनके प्राकृतिक रूप में बनाने की बात कही गयी है। इस प्रकार के अंकन स्वतंत्र रूप से पूर्व भारतीय कला में विद्यमान हैं, पर इन अवतारों के मन्दिरों की बात नहीं सुनाई पड़ती। अपवाद हों तो बात दूसरी है। वराह के नृवराह के रूप का वर्णन तो इस पुराण में है, पर यज्ञ वराह अर्थात् पूर्ण पशु की आकृति का उल्लेख नहीं है। विशेष बात यह है कि वराह स्थापना का फल राज्य की प्राप्ति तथा संसार सागर को लांघने की क्षमता का लाभ बताया गया है (वराहस्थापनादाज्यं भवाब्धि तरणं भवेत्[20]। हम जानते हैं कि मूर्तिकला के क्षेत्र में नृवराह का उदय तो मथुरा की कुषाण कला में हो चुका था (मथुरा संग्रहालय 65.15) पर उसका विशाल रूप में अंकन गुप्तकाल से आरम्भ हुआ। विदिशा स्थित उदयगिरि का नृवराह तथा एरण का यज्ञवराह इसके प्रमुख उदाहरण हैं। मध्यकाल और उसके बाद भी अनेक छोटे बड़े वराह बनते रहे। प्रतिहार वंश का मिहिर भोज (ल० सन् 836-882) ने स्वयं आदिवराह की उपाधि धारण कर अपनी मुद्राओं पर उसे अंकित भी कराया। **अग्निपुराण** के अनुसार नरसिंह के आयुध हैं चक्र और गदा। वे अपने दो हाथों से जांघ पर रखे असुर का पेट फाड़ रहे हैं। उनके फैले हुए मुँह के लिये सुन्दर शब्द हैं 'विवृतास्य'। यहाँ एक और सूचक शब्द है 'माली'। कुछ चित्रों में नरसिंह को अपने गले में हिरण्यकशिपु की अँतड़ियों की माला पहनाते हुए दिखलाया जाता है। **अग्निपुराण** का यह शब्द (तद्वक्षोदारयन् माली स्फुरच्चक्रगदाधर:[20] उसी अर्थ में तो नहीं है? नरसिंह के अन्य प्रकारों का यहाँ अभाव है।

वामन के द्विभुज और चतुर्भुज दोनो रूपों का उल्लेख है। दो हाथों वाले वामन 'छत्री' और 'दण्डी' हैं। छत्र लिये इस प्रकार की ठिंगनी एवं स्थूल काय मूर्तियाँ बुन्देलखण्ड की चन्देल कला में मिलती हैं (रानी महल, झांसी, 122)। **अग्निपुराण** चार हाथ वाले वामन के आयुधों को नहीं गिनाता, पर कला के क्षेत्र मे हस्व एवं पृथुल शरीर वाले विष्णु की अनेक मूर्तियाँ मिलती हैं। इनके आयुध भिन्नता से एकाधिक प्रकार हैं। हिंगलाजगढ़(मध्यप्रदेश) से प्राप्त ऐसी एक प्रतिमा में विष्णु के पास अक्षमाला और पोथी भी है। त्रिविक्रम के विषय में यहाँ कोई उल्लेख नहीं है।

अगले तीन अवतारों को 'राम' शब्द से ही सम्बोधित किया गया है। ये हैं परशुराम, दाशरथी राम और बलराम।

परशुराम को धनुष वाण अथवा खड्ग और परशु धारण करने वाला कहा गया है। दाशरथी राम के दो रूप हैं– द्विभुज और चतुर्भुज। चार हाथ वाले राम के आयुध हैं धनुष, वाण, खड्ग और शंख (अ०पु० 49.6, पृ० 93)। राम साधारणतया चार हाथ वाले नहीं होता, पर ऐसी मूर्तियाँ ल. दसवीं शती से कला के क्षेत्र में प्राप्य हैं। उनके हाथों में कहीं वर और शंख, कहीं खड्ग, पद्म, शंख और धनुष, कहीं सीता का आलिंगन और कहीं चक्र और शंख दिखलायी पड़ते हैं (उदा० रानी महल झांसी 150, 1163, लखनऊ संग्रहालय जी० 406, पार्श्व नाथ मन्दिर, खजुराहो में अंकन आदि)। विष्णु के आठवें अवतार के रूप में कृष्ण का नहीं बलराम का उल्लेख है। बलराम के चार हाथों में प्रदक्षिणा क्रम से चक्र, मूसल, हल और शंख बतलाये गये हैं। चतुर्भुज बलराम की मूर्तियाँ उत्तर भारत में कुषाण काल से मध्यकाल तक बराबर मिलती हैं, पर उनके आयुधों में अन्तर है। साधारणतया बलराम के एक हाथ में मद्य का प्याला रहता है जिसका अग्निपुराण उल्लेख नहीं करता[21]। आठवें अवतार के रूप में बलराम का अंकन पाल कला की कई विष्णुमूर्तियों की पृष्ठशिला पर विद्यमान दशावतारों में देखा जा सकता है। 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' वाले वैष्णवों को अनुमन्य सिद्धान्त का यहाँ प्रभाव लक्षित होता है।

नवम अध्याय के रूप में अग्निपुराण बुद्ध के नाम के साथ उनके लक्षण यथा शान्तात्मा, लम्बकर्ण, गौराङ्ग, अम्बरावृत तथा वरद और अबय मुद्रा में ऊर्ध्व पद्म पर स्थित होना बतलाता है[22]। उल्लेखनीय है कि पूर्व भारतीय कला की विष्णु मूर्तियों की पृष्ठशिला पर अंकित दस अवतारों में बुद्ध का अंकन विशेष रूप से देखा जा सकता है। अन्यत्र परंपरा में भिन्नता है। दसवाँ अवतार कल्कि का है जो द्विभुज और चतुर्भुज दोनों रूपों में वर्णित है। चार हाथ वाले कल्कि सामान्य नहीं हैं, पर मथुरा क्षेत्र में प्राप्त सूर्य की एक मध्यकालीन मूर्ति में—जिसे सूर्य नारायण कहना अधिक उपयुक्त होगा (मथुरा संग्रहालय 88.19)—विष्णु के अवतारों के बीच घोड़े पर बैठे कल्कि बने हैं, जिनके हाथों में घोड़े की रास, शंख, गदा और चक्र हैं।

अग्निपुराण के इस अध्याय में वर्णित अन्य मूर्तियां हैं वासुदेव, बलराम, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, अष्टभुज विष्णु या त्रैलोक्य मोहन बीस हाथ वाले विश्वरूप विष्णु, जिनके अगल बगल लक्ष्मी व सरस्वती की स्थिति उल्लेखित है, बाँयी करवट पर लेटे त्रिनेत्र जलशायी अर्थात् शेषशायी विष्णु, गौरी और लक्ष्मी के साथ बने हरि-शंकर (इस प्रकार की एक उत्तरमध्यकालीन मूर्ति ग्वालियर के सूबे की गोठ मे स्थित हरिहरेश्वर मन्दिर में है), अश्वक्षिर या हयग्रीव, दत्तात्रेय आदि। विष्णु के गण के रूप में चक्र, गदा, हल और शंख को धारण करने वाले विष्वक्सेन भी वर्णित है[23]।

देवी प्रतिमाएँ

अग्निपुराण के दो अध्यायों में (अ०पु०, 51-52) विभिन्न देवी प्रतिमाओं के लक्षण दिये गये हैं। उनमें प्रमुख हैं अठारह भुजाओं वाली दुर्गा, बीस हाथों वाली चण्डी, सोलह भुजाओं वाली दुर्गा के अलग अलग रंगों वाले नौ रूप (चण्डा, चण्डवती, चण्डरूपा, रुद्रचण्डा, प्रचण्डा, चण्डोग्रा, चण्डनायिका, उग्रचण्डा व अतिचण्डिका) वर्णित हैं। इसी प्रकार गौरी के रूप सिद्धा और ललिता, लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा, यमुना, ब्राह्मी आदि सप्तमातृकाओं की भी चर्चा है। सप्तमातृकाओं के आरम्भ में वृषारूढ(?) शिव का उल्लेख है तथा अन्त में 'विनायक' या गणपति हैं। यहाँ पर अकेले गणपति के मूर्ति निर्माण की विस्तार से चर्चा क्यों की गयी है यह समझ में नहीं आता ! गणेश मूर्ति विषयक चर्चा हम आरम्भ मे कर चुके हैं।

कार्तिकेय विषयक स्वामी, शाख और विशाख की बात करने के बाद **अग्निपुराण** 'अम्बाष्टक' नाम से आठ देवियों को (रुद्र चर्चिका, रुद्र चामुण्डा, नाटेश्वरी, महालक्ष्मी, सिद्ध चामुण्डा, सिद्ध योगेश्वरी, भैरवी तथा रूपविद्या) को गिनाता है। इनमें से कुछ आठ तथा दस हाथों वाली भी हैं। इस अम्बाष्टक को श्मशानज एवं रौद्र कहा गया है। इसी प्रसंग में बूढी दन्तुरा, स्तब्ध और बड़ी आँखों वाली यक्षिणी, वक्र दृष्टि वाली शाकिनी, महारम्या अपसराएँ आदि उपदेवियों का भी समावेश है। कुछ शिवगणों के वर्णन के साथ यह अध्याय समाप्त होता है।

बावनवे अध्याय में योगिनियों के आठ अष्टकों की चर्चा है, जिनकी कुल संख्या चौसठ होगी। इनके नाम हैं—

1.	अक्षोभ्या	17.	हुताशा	33.	संबरा	49.	शिशुवक्त्रा
2.	रुक्षकर्णी	18.	विशालाक्षी	34.	तालजंघिका	50.	पिशाची
3.	राक्षसी	19.	हुंकारा	35.	रक्ताक्षी	51.	पिशिताशा
4.	कृपणा	20.	वडवामुखी	36.	सुप्रसिद्धा	52.	लोलुपा
5.	क्षया	21.	महाक्रोधा	37.	विद्युज्जिह्वा	53.	धमनी
6.	पिंगाक्षी	22.	क्रोधना	38.	करंकिणी	54.	तापनी
7.	क्षेमा	23.	भयंकरी	39.	मेघनादा	55.	रागिणी
8.	इला	24.	महानना	40.	प्रचण्डा	56.	विकृताननना
9.	नीलालया	25.	सर्वज्ञा	41.	उग्रा	57.	वायुवेगा
10.	लीला	26.	तरला	42.	कालकर्णी	58.	वृहत्कुक्षी
11.	लक्ता	27.	तारा	43.	वरप्रदा	59.	विकृता
12.	बलाकेशी	28.	ऋग्वेदा	44.	चन्द्रा	60.	विश्वरूपिका
13.	लालसा	29.	हयानना	45.	चन्द्रावली	61.	यमजिह्वा
14.	विमला	30.	साराख्या	46.	प्रपंचा	62.	जयंती
15.	जयन्तिका	31.	रुद्रसंग्राही	47.	प्रलयान्तिका	63.	दुर्जया
16.	पूतना	32.	रेवती	48.	विजयांतिका	64.	बिडाला

'क्षया' नाम की पुनरुक्ति है।* इन योगिनियों का विस्तार से वर्णन तो नहीं है पर इतना ही कहा गया है कि ये चार या आठ हाथों वाली तथा इच्छानुसार अस्त्रों को धारण करने वाली (इच्छास्त्रा) हैं। अध्याय के अन्त में बारह हाथ वाले भैरव, मातृनाथ अर्थात् मातृकाओं के साथ रहने वाले चतुर्मुख बृघारूढवीरभद्र, द्विभुजा एवं चतुर्भुजा गौरी तथा शूल से महिष पर प्रहार करने वाली दशहस्ता चण्डिका का उल्लेक है।

सूर्यादि इतर मूर्तियाँ

एकावनवे अध्याय का आरंभ सूर्य की प्रतिमाओं से होता है। इस क्रम में रथ या घोड़े पर बैठे सूर्य, उनका परिवार, उनके बारह रूप तथा राशियों से सम्बन्ध आदि की चर्चा है। उल्लेखनीय है कि राशि की गिनती तो मेष से की गई है पर सम्बन्धित महीनों की गणना चैत्र से नहीं, अपितु मार्गशीर्ष से आरम्भ की गई है। स्मरणीय है कि **भगवद्गीता** में मार्गशीर्ष को ही श्रीकृष्ण की 'विभूति' कहा गया है (मासानां मार्गशीर्षोऽहम्[24]। इसके बाद नवग्रह, अष्ट दिक्पाल, विश्वकर्मा, हनुमान्, वीणाधारी किन्नर, मालाधारी विद्याधर, दुर्बल अङ्गवाले पिशाच, विकृत मुख वाले वेताल, शूल लिये क्षेत्रपाल एवं बड़े पेट वाले किन्तु दुबले पतले प्रेतों के लक्षणों के साथ यह अध्याय समाप्त होता है।

तिरपन और चौवनवां अध्याय शिवलिंग के लक्षण एवं मान आदि के लिये समर्पित है। लिंग निर्माण के माध्यमों में मिट्टी, काष्ठ, शिला, मोती, सोना, चांदी, तांबा, पीतल के साथ रंग (?) रस (पारा?), घृत, लवण तथा वस्त्र का भी उल्लेख है[25]। विशेष उल्लेखनीय है कि मिट्टी के लिंगों के दो प्रकार गिनाये गये हैं—पक्व और अपक्व, अर्थात् कच्चे और पकाये गये। इनमें पकाये गये (पक्वज) को श्रेष्ठ माना गया है[26]। लिंगमान का विस्तार से वर्णन करने के उपरान्त

---

* 'क्षया' नाम की पुनरुक्ति है। संभव है एक स्थान पर क्षया के स्थान पर क्षमा हो किन्तु इस प्रकार संख्या 65 हो जाती है। (सम्पादक)

मुखलिंगों की चर्चा है, जिसमें एकमुख तथा चतुर्मुख लिंगों की चर्चा है। कुछ संकेत शिव की लिंगांकित आवक्ष मूर्ति का भी मिलता है। प्रत्यक्ष कलाकृतियों में हमें एक ओर या चारों ओर शिव की पूरी या आवक्ष मूर्तियों से युक्त लिंग मिले हैं।

उल्लेखनीय है कि प्रतिमा लक्षणों से सम्बन्धित इन अध्यायों में शिव की अन्य सौम्य या उग्र मूर्ति का कोई उल्लेख नहीं है। क्या यह तथ्य भी वैष्णव प्रभाव का सूचक है?

अन्यत्र वर्णित कुछ प्रमुख देव प्रतिमाएँ

हम ऊपर कह चुके हैं कि लक्षणाध्यायों के अतिरिक्त पुराणों में अन्यान्य स्थानों पर भी देवताओं के स्वरूप या उनकी प्रतिमाओं से सम्बन्धित सामग्री बिखरी रहती है। अग्निपुराण की इस प्रकार की सामग्री से कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं ।

(1) पंचमुख दस हाथों वाले शिव

'शिव पूजा कथन' शीर्षक वाले 74वें अध्याय में सिंहासन पर बैठे खण्डेन्दु अर्थात् चन्द्रकोर को धारण करने वाले बत्तीस लक्षणों से युक्त शुक्ल वर्ण के शिव का वर्णन है। उनके पाँच मुख हैं और दस हाथों में दाहिनी ओर शक्ति, ऋष्टि या खड्ग, शूल, खट्वांग तथा वर, एवं बाँयी ओर डमरु, बिजौरा, नीलकमल, सूत्रक (पाश?) तथा उत्पल होंगे[27]।

(2) मृत्युञ्जय[28]

इनके चार मुख तथा चार हाथ होंगे। दो हाथ अभय और वरद मुद्रा में तथा दो हाथ कलश लिये रहेंगे।

(3) नाग[29]

अग्निपुराण में प्रमुख नाग (नागवर्यका:) केवल आठ हैं: शेष, वासुकी, तक्ष, कर्कोट, अब्ज, महांबुज, शंखपाल और कुलिक। इन्हें रथांग (चक्र), लांगल (हल), छत्र, स्वस्तिक तथा अंकुश को धारण करने वाले एवं हाथ में दर्वी (कलछुल) रखने वाले बतलाया गया है। ऊपर गिनाई वस्तुओं में चक्र, स्वस्तिक तथा अंकुश की गणना मंगल चिह्नों में होती है। मथुरा कला के कुषाणकालीन नागों की फणाओं पर पूर्णघट, श्रीवत्स, स्वस्तिक आदि चिह्न दिखलाई पड़ते हैं[30]। यह परम्परा प्राचीन थी। महाभारत में भी नागों का वर्णन 'मणिस्वस्तिक चक्रांका: कमण्डलुका लक्षणा:' इस रूप में किया गया है[31]।

(4) गौरी

प्रतिमा लक्षणों में हम गौरी का उल्लेख कर चुके हैं। इसके अतिरिक्त **अग्निपुराण** के अध्याय 313 व 327 में भी गौरी के रूपों के उल्लेख है। एक स्थान पर[32] रक्त वर्णा गौरी को चतुर्भुजा बतलाकर हाथों में पाश, वर, अंकुश तथा अभय को गिनाया गया है। दूसरे स्थान पर[33] हेमा (सोने की), रुपया (चांदी की), काष्ठ, शिला आदि की बनी गौरी को दो, चार, आठ या अठारह हाथों वाली बताते हुए उसके वाहन के रूप में सिंह या वृक अर्थात् भेड़िये का उल्लेख किया गया है। देवी के अठारह हाथों में दाहिनी ओर माला (स्रक्), अक्षसूत्र, कालिका, गलक (मुण्ड?), उत्पल, पिण्डिका (शिवलिंग), शर व धनुष, तथा बाँयी ओर पोथी (पुस्त), तांबूल, दण्ड, अभय, कमण्डलु, गणेश, दर्पण, बाण, ?, क्रम से विद्यमान होंगे। गौरी की ज्ञात मूर्तियों में शिवलिंग के अतिरिक्त ऊपर गिनायी वस्तुओं में से कुछ मिलती हैं, पर अठारह हाथों वाली तथा सिंह या भेड़िये का वाहन रूप में प्रयोग करने वाली कोई मूर्ति अभी तक ज्ञात नहीं है। यहाँ आया 'वृक' शब्द विचारणीय है। इसके भेड़िये के अतिरिक्त लकड़बग्घा, सियार, उल्लू तथा कौआ भी अर्थ होता है, पर इनमें से कोई भी वाहन रूप में कदाचित् ही कहीं गौरी के साथ उल्लेखित हो। गौरी के पैरों के नीचे गोधा या गोह अवश्य मिलती है पर उसकी कारण मीमांसा अज्ञात है।

(5) वागीश्वरी[34]

यह पचास वर्णों की प्रतीक (14 स्वर तथा 36 व्यंजन) मोती की माला धारण करने वाली चार हाथों की देवी है। वर, अभय, अक्षसूत्र (माला) तथा पुस्तक इसके आयुध हैं।

(6) त्वरिता

अग्निपुराण में त्वरिता देवी का ध्यान, पूजन, मन्त्र, विद्या आदि का विस्तृत विवेचन चार अध्यायों में है। त्वरिता के दो रूप बताये गये हैं[35]। एक तो पार्वती का शकरी रूप है। **अग्निपुराण** बतलाता है कि जब शिव ने शकर या किरात का रूप धारण किया था, तब उनकी पत्नी शकरी अर्थात् किराती बनी थी[36]। इसके स्वरूप का वर्णन करते हुए इसे वरद एवं अभय मुद्रा में सिंहासन पर बैठी हुई बतलाया गया है। इसकी अन्य विशेषताएं हैं त्रिनेत्र, किसलय या कोमल पत्तियों का वस्त्र (किसलयांशुक), मोर पंख से निर्मित वलय (कंगन) तथा मौलि (शिरोभूषण), मोर के लंबे पंखों का छत्र (मायूरवर्हि छत्र) कंठ में वनमाला, सांपों का ही कर्णाभरण, केयूर, कटिबन्ध एवं नुपुरों के रूप में प्रयोग। देवी का वर्ण श्यामला कहा गया है। अगले अध्याय में 'अपरात्वरिता' के नाम से देवी का दूसरा ध्यान वर्णित है[37]। अठारह हाथ वाली इस देवी का बाँया पैर सिंह पर होगा। नागों के आभूषण होंगे (नागभूषा) तथ आयुध एवं मुद्रा के रूप में दाहिनी ओर वज्र, कुण्ड (?), खड्ग, चक्र, गदा, शूल, शर, शक्ति तथा वरद मुद्रा एवं बांयी ओर धनुष, पाश, शर घण्टा, तर्जनी मुद्रा, शंख, अंकुश, अभय मुद्रा तथा वज्र होंगे। त्वरिता के पूजन का फल शत्रुओं का नाश, राष्ट्र का विजय, ऐश्वर्य तथा दीर्घ आयुष्य की प्राप्ति बतलाया गया है (पूजनाच्छत्रुनाशस्याद्रापदं जयति लीलया दीर्घायु: राष्ट्रभूतिस्यान् दिव्या दिव्यादि सिद्धि भाक्[38]। अन्यत्र नागों से सम्बद्ध होने के कारण त्वरिता को मनसा से भी जोड़ा गया है[39], ध्यान में भी कुछ बदलाव है तथा वाहन कौवा बतलाया गया है।[40] त्वरिता शब्द का निर्वचन करते हुए कहा गया है कि 'भक्तों के मनोरथ पूर्ण करने के लिये त्वरा युक्त रहने वाली अत: त्वरिता[41]।

इस प्रकार त्वरिता के दो रूप सामने आते हैं: एक द्विभुजा शकरी या किराती और दूसरी अष्टादश भुजा सिंह वाहिनी। कला के क्षेत्र में द्विभुजा शकरी से मिलती जुलती दो प्रतिमाएँ विचारणीय हैं। प्रथम वडोदरा संग्रहालय की ए० सी० 2.548 संख्यक शामलाजी (गुजरात) से प्राप्त मूर्ति जिसे डा० उमाकान्त प्रेमानंद शाह ने 'भिल्ल स्त्री' के नाम से पुकारा है[42]। तीन आँखों वाली इस देवी के बाल बिखरे हुए हैं, बांये कंधे से सर्प लटक रहा है जो खण्डित है, बाँया हाथ टूटा है तथा दाहिना कटिविन्यस्त है। वस्त्र एवं उपवस्त्र के लिये पशुचर्म का उपयोग किया गया है तथा पैरों के पास कुत्ता भी है। इस मूर्ति को पाँचवीं शती के आरम्भ की मान सकते हैं। दूसरी प्रतिमा होयसान कला की ल. 12वीं शती की है जो इस देवी का 'किसलयांशुक' या 'पर्णासुक' बड़े ही सुन्दर ढंग का बना है। आभूषण भी हैं, पर साँपों के नहीं[43]।

त्वरिता के दूसरे रूप एवं रोचक सन्दर्भ के लिये हमें महाराष्ट्र की यात्रा करनी होगी। महराष्ट्र की सुप्रसिद्ध तुलजा भवानी (तुलजापुर, शोलापुर से 24 मील) त्वरिता की ही रूप है: त्वरिता, तुरजा, तुलजा ! त्वरित प्रसन्न होने वाली त्वरिता, त्वरा से जाने वाली तुरजा एवं अपभ्रंश में तुलजा[44]। तुलजा भवानी समर्थ रामदास की कुलस्वामिनी एवं छत्रपति शिवाजी की आराध्या रही। इसके प्रमुख पूजन एवं प्रचार का कारण अग्निपुराणोक्त फलश्रुति भी हो सकती है जिसकी मुसलमानों के पंजों से छुटकारा पाकर हिन्दू राज्य की स्थापना के लिये समुद्यत शिवाजी को अत्यन्त आवश्यकता थी।

तुलजा की मूल प्रतिमा को बीजापुर के अली आदिलशाह के सेनापति अफजलखान ने सन् 1659 में तोड़कर चक्की में पिसवा दिया था। समर्थ रामदास ने उसे पुन: प्रतापगढ़में स्थापित किया। तुलजापुर की वर्तमान प्रतिमा अष्टभुजा महिषमर्दिनी की है तथा उसके आयुध हैं— त्रिशूल, कट्यार, बाण, चक्र, शंख, धनुष, पानपात्र तथा असुर मस्तक[45]।

अग्निपुराण में अन्यान्य देवियों के भी प्रचुर संकेत हैं, पर यहाँ उन सबका विवेचन संभव नहीं है।

प्रस्तुत लेख के लिये 'अग्निपुराण' की मनसुखराय मोर द्वारा 1957 में कलकत्ते से प्रकाशित प्रति का उपयोग किया गया है। मत्स्य और बह्मवैवर्त पुराण भी वहीं से प्रकाशित हैं।

संदर्भ

1. R.C. Hazra, *Hazra Commemoration Volume,* Varanasi, I, p. 73-80
2. ibid., p. 101
3. ibid., p. 123
4. अ० पु० 43.9-11, पृ० 83
5. अ० पु० 43.13-15, पृ० 83
6. वि० ध०, 3.90
7. अ० पु० 43.17.21, पृ० ० 84
8. स्वप्न मंत्र - ॐ नमः सकल लोकाय विष्णवे प्रभविष्णवे ।
   विश्वाय विश्वरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः ।।
   आचक्ष्व देवदेवेश ! प्रसुप्तोस्मि तवान्तिकम्
   स्वप्ने सर्वाणि कार्याणि हृदिस्थानि तु यानि में । (अ०पु० 43.23-24)
9. अ० पु० 43.25-27, पृ० 84
10. ब्र० वै० पुद, प्रकृति. 4.19-23, पृ० 118; 4.46-51 पृ० 119
11. अ० पु० 45.8-9, पृ० 104
12. रूप० 5.15, पृ० 187
13. रूप० 1.20, पृ० 115
14. मत्स्य० 257.26-75, पृ० 718
15. एस.के. रामचन्द्र राव, प्रतिमा कोष-3, पृ० 28-36
16. अ० पु० 45.15, पृ० 88
17. अ० पु० 56-60
18. ब्रह्मादि स्तम्ब पर्यन्तं हृदयेषु व्यवस्थितम्
    हृदयात् प्रतिमा बिम्बे स्थिरो भव परमेश्वर ।।
    सजीवं कुरु बिम्बं त्वं सबाह्याभ्यन्तर स्थितः
    अंगुष्ठ मात्रः पुरुषो देहोपाधिषु संस्थितः ।। (60.21.22 पृ० 115)
19. अग्निपुराण के अतिरिक्त हमें चौबीस मूर्तियों की खण्डित या पूर्ण आठ अन्य सूचियाँ प्राप्त हैं—वृद्धहारीत स्मृति, 7.108-14, स्मृति सन्दर्भ 2, पृ० 11179, पद्मपुराण, पाताल खण्ड, 38.16-27, पृ० 330, स्कन्तपुराण, काशी खण्ड, 61.215-33, पृ० 441, मानसोल्लास, 1.691-94, चतुर्वर्गचिन्तामणि, व्रतखण्ड, अध्याय 9, अपराजित पृच्छा, 217.1-32, पृ० 553, रूपमण्डन, 3.9-21, पृ० 135, धर्मसिंधु, परिच्छेद 3, पूर्वार्ध, पृ० 633।
20. अ० पु० 94.3, पृ० 92
21. *N.P. Joshi, Iconography of Balarāma, Delhi, Plate No. 16-17, 26-27, 33*
22. अ० पु० 49.8, पृ० 93
23. अ० पु० 49.27, पृ० 94
24. गीता 10.35
25. अ० पु० 54.3-4, पृ० 101
26. अ० पु० 54.2, पृ० 101
27. अ० पु० 74.50-52, पृ० 142
28. अ० पु० 326.25, पृ० 674
29. अ० पु० 294.2, पृ० 606

30. *N.P. Joshi, Iconography of Balarāma, Delhi, p. 35)*
31. महाभारत , गीता प्रेस प्रति., पृ० 2336
32. अ० पु० 313.17, पृ० 649
33. अ० पु० 326.8-13, पृ० 673)
34. अ० पु० 319.3, पृ० 659
35. अ० पु० 302.12, पृ० 639-48
36. अ० पु० 309.7, पृ० 640
37. अ० पु० 310.3-5, पृ० 641
38. अ० पु० 310.6, पृ० 641
39. Fredric W. Brunce, *Encyclopedia of Hindu Deities, Demi-gods, Godlings, Demons and Heroes,* New Dehli, Vol. 1, p. 585
40. शारदातिलक के दसवें पटल में त्वरिता को 'कैराती' कहा गया है। इसका ध्यान निम्नांकित है—
    श्यामां बर्हिकलायशेखर युतामाब्द्ध पर्णांसुकां
    गुंजाहारलसप्तयोधरभरां अष्टाहियान् विभ्रतीम् ।
    ताटंकांगद मेखलागुणरणन् मञ्जीरतां प्रापितान्
    कैरातीं वरदाभयोद्यत करां देवीं त्रिनेत्रां भजे ।।
41. कल्याण, अग्निपुराणाङ्क, जनवरी 1971 पृ० 517
42 U.P. Shah, *Sculptures from Shamlalji and Roda,* 1960, Fig. 25, p. 43
43. N.L. Mathur, *Sculpture in India,* New Delhi, 1972, plate no. 45, p. 83
44. कल्याण, शक्ति उपासना अंक, जनवरी 1987, पृ० 428
45. शं० श्री० अम्कुलकर, तुलजापुर, दर्शनयात्रा, पुणें, पृ० 10

* * *